International Research Journal of Humanities, Language and Literature
ISSN: (2394-1642)
Impact Factor 5.401 Volume 7, Issue 8, August 2020
Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
Website-www.aarf.asia, Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

मध्यकालीन उत्तर भारत में मुस्लिम समुदाय की शैक्षिक स्थिति का आंकलन

– डॉ0 (सूफी) शकील अहमद

प्रवक्ता, इतिहास विभाग
मुमताज़ पी.जी. कॉलेज, लखनऊ

मध्य युगीन में उत्तर भारत में मुस्लिम बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा इस्लामी शिक्षा ही प्रदान की जाती थी। इसका मुख्य उद्देश्य मुस्लिम बच्चों में **'एकं ब्रह्मो द्वितीय नास्ति'** अर्थात् **ब्रह्म या ईश्वर या अल्लाह तआला** को एक मानना, उसके एहकाम (आदेशों) और हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की सुन्नतों (उनकी क्रिया–कलापों) की सम्यक् जानकारी (ज्ञान) प्रदान करा कर, उस पर अमल कराना था जिससे कि वे एक, नेक व सच्चे ईमानदार (विश्वस्नीय) मुसलमान बनकर जीवन–यापन कर सकें। इसका यह भी उद्देश्य था कि बच्चे इस्लामी शिक्षा पर सही–सही अमल करते हुए दूसरों के लिए एक मिसाल (उदाहरण) बन सकें जिससे कि दूसरे लोग भी प्रभावित होकर इस्लाम की शरण ले सकें और मरणोपरान्त मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर स्वर्गवासी बन सकें।

वास्तव में मुस्लिम शिक्षा प्रधानतः मजहबी (धार्मिक) थी जिस पर कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। बच्चे को बचपन से ही पवित्र कुरआन शरीफ का नाज़रा (बाँचना) सिखाया जाता था। कुछ विद्यार्थियों को बाल्यावस्था से ही पवित्र **'कुरआन शरीफ़'** और उसके उपदेशों को कण्ठाग्र कराया जाता था। भले ही वे उसके अर्थों को नहीं समझपाते थे। इस प्रकार 12 वर्ष की आयु में ही कोई लड़का पवित्र कुरआन शरीफ़ जबानी याद कर **'हाफिज़–ए–कुरआन'** हो सकता था।

यह स्मरणीय है कि जो शिक्षा प्रणाली सल्तनत काल से मुग़लों के समय तक प्रचलित थी, वह आगे तक चलती रही। यह शिक्षा तीन प्रकार की संस्थाओं द्वारा प्रदान

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

की जाती थी– मक़तबों, मस्जिदों व खानक़ाहों में और कहीं–कहीं इनसे सम्बद्ध पाठशालाओं द्वारा जो क्रमशः प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के लिए होते थे। शनैः–शनैः इन शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा के साथ–साथ असरी तालीम जिसमें समाज के लिए हितकारी विषय भी जोड़े जाने की प्रक्रिया आरम्भ हुई। आगे चलकर यही विद्यार्थी विभिन्न भाषाओं तथा अन्य विषयों में निपुणता अर्जित करने में सफल हुए। इस प्रकार प्रारम्भिक इस्लामी शिक्षा ने ही सांसारिक विषयों के द्वार खोलने में सफलता प्राप्त की, जैसा कि आधुनिक शिक्षण संस्थाओं में दृष्टिगोचर हो रहा है।

प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था एवं स्थितिः

प्रारम्भिक (बुनियादी) शिक्षा व्यक्तिगत घरों व शिक्षालयों में प्रदान की जाती थी जिन्हें **'मकतब'** कहा जाता था। शिक्षा प्रदान करने का ढंग काफी सरल था। बच्चों को सर्वप्रथम वर्णमाला का ज्ञान, उच्चारण, विराम चिन्हों तथा स्वर चिन्हों के साथ कराया जाता था। इसके बाद संयुक्त अक्षरों का ज्ञान कराया जाता था। तत्पश्चात् अक्षरों से शब्दों को और उन शब्दों से छोट–छोटे वाक्यों को पढ़ना व लिखना सिखाया जाता था। प्रतिदिन अभ्यास करने हेतु बच्चों को सबक (पाठ) दिया जाता था। उन्हें तख़्ती पर लिखना भी सिखाया जाता था। इससे धीरे–धीरे बच्चों में पढ़ने व लिखने में आदत पड़ जाती थी और कुछ समय पश्चात् वे उसमें प्रवीण हो जाते थे।

पढ़ाई के दरमियान बच्चे अल्थी–पल्थी मार कर हाथों में किताब लेकर ज़मीन पर बैठकर अपने उस्ताद (अध्यापक) से पाठ लिया करते थे। अध्यापकगण बच्चों के सामने बैठकर ज़मीन पर, व्याख्यान मंच पर बैठकर कभी–कभी खड़े होकर शिक्षण कार्य किया करते थे। विद्यार्थी सरकण्डे की कलम से तख़्तियों पर लिखने का अभ्यास किया करते थे। सबक (पाठ) समाप्त होने पर तख़्ती को धोकर साफ कर दिया जाता था।[1] शिक्षा का माध्यम फारसी था जो भारत में दरबारी भाषा के रूप में प्रचलित थी।

बच्चों को 'कुरआन शरीफ़' थोड़ा–थोड़ा कंठस्थ कराया जाता था। इसे पूर्ण करने वाले बच्चे को **'हाफिज–ए–कुरआन'** कहा जाता था। यह प्रथा आज भी प्रचलित है। कुछ बच्चों को 'कुरआन शरीफ़' की सूरतों को ज़बानी याद कराया जाता था। प्रसिद्ध फारसी के विद्वान 'सादी' और अन्य फारसी के कवियों के कलाम (पद्य) कंठस्थ कराये जाते थे।

बाल्यकाल में बच्चों की बुद्धि अत्यन्त गतिशील हुआ करती थी और बच्चों पर पड़ने वाले प्रभाव अमिट हुआ करते थे।

माध्यमिक शिक्षा की स्थितिः

माध्यमिक शिक्षा मस्जिदों व खानकाहों से सम्बद्ध पाठशालाओं में प्रदान की जाती थी। अनेक शिक्षक तथा यशस्वी सन्त जो अपने समय के महान विभूतियाँ (हस्तियाँ) थी जो अपने ज्ञान के क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त किये होते थे वे ही बच्चों को शिक्षा प्रदान किया करते थे। कभी–कभी तो ऐसी नामवर हस्तियाँ जो व्यक्तिगत रूप से खानकाहों की स्थापना करके, उनमें धार्मिक शिक्षा प्रदान किया करते थे। इसी के साथ–साथ वे अपने रहस्यमय विचारों एवं उपदेशों से विद्यार्थियों को अवगत कराया करते थे।[2] कभी–कभी उनके सम्पर्क में आकर कुछ बच्चे अध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर वली–ए–कामिल या ईशलीन होकर, अलौकिक शक्तियाँ एवं ईश–प्रदत्त चमत्कारी शक्तियाँ भी प्राप्त कर लेते थे।

उच्च शिक्षा की व्यवस्थाः

साधारणतः उच्च शिक्षा के वास्तविक केन्द्र 'मदरसे' कहलाते थे। अभी तक जामिया (विश्वविद्यालय) की कोई कल्पना नहीं की गयी थी। कहा जाता है कि **"पूर्वकाल में मुसलमानों को उच्च शिक्षा उच्च कोटि के विद्वानों के नियंत्रण में ही हुआ करती थी। वे स्वयं को युवा वर्ग के शिक्षण के लिए अपने को कुर्बान (अर्पित) कर देते थे..........योग्य शिक्षकों को राज्य से भी व्यक्तिगत सहायता प्राप्त होती थी तथा नामवर (यशस्वी) विद्वानों को आश्रय देने में जमीदारों व अभिजात वर्ग (उच्च श्रेणी वर्ग) के व्यक्तियों में सदैव प्रतिस्पर्धा बनी रहती थी................विद्वान शिक्षकों की कक्षाएं, धर्मपरायण व्यक्तियों की उदारता से स्थापित एक आधुनिक प्रकार के मदरसों या दारूलउलूम (महाविद्यालयों) द्वारा प्रतिस्थापित कर दी गयी थी।**[3] उच्च ज्ञान की ये शिक्षण–संस्थाएं धार्मिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण स्थान रखती थीं। वास्तव में देखा जाए तो इन संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य सम्बन्धित छात्रों के मन–मस्तिष्क में ईश्वर के प्रति विशेष प्रकार के अटूट विश्वासों को स्थापित करना तथा इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों के अनुरूप

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)

आचरण करना, उसकी रक्षा करना, रक्षा करना, उसका प्रसार करने के लिए स्वयं को पूर्णरूप से अनुशासनबद्ध जीवन व्यतीत करना था।

डॉ0 यूसुफ हुसैन अपनी पुस्तक में लिखते है– **''मध्य युग में सोचने का नजरिया (दृष्टिकोण) मज़हबी (धार्मिक) था। तारीख (इतिहास), राजनीतिशास्त्र, दर्शन, तथा अन्य विषयों की शिक्षा मज़हबी (धार्मिक) नियंत्रण में थी, और उन्हें मज़हबी (धार्मिक) परिभाषाओं के अनुकूल बना लिया गया था। अतः लोगों के सोचने और विचारों के जाहिर (अभिव्यक्ति) करने का नज़रिया (दृष्टिकोण) मज़हबी होता था।**[4] अतः उस समय की शिक्षा–प्रणाली धर्मतान्त्रिक राज्य की भावना के समानान्तर ही चलती थी।

कुछ महत्वपूर्ण मदरसे– यदि गहराई से देखा जाये तो उत्तर भारत में स्थित उच्च शिक्षा के महत्वपूर्ण मदरसों की फेहरिस्त (सूची) में निम्न मदरसों का विशेष उल्लेख किया जाता है–

(अ) मदरस–ए–फरंगी महल– लखनऊ का सबसे प्रसिद्ध मदरसा– 'मदरस–ए–फरंगी महल' जो मुल्ला कुत्बुद्दीन[5] के पुत्र मुल्ला निजामुद्दीन की देखरेख में 17वीं शताब्दी में स्थापित किया गया था। यह मदरसा इस्लामी शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र था। इस मदरसे को **'आलिया–ए–निज़ामिया'** के नाम से भी सम्बोधित किया गया।[6] इस संस्था में उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम का विकास हुआ।[7] यही दर्स–ए–निज़ामी कहलाया।[8] मुल्ला निजामुद्दीन के परिवार में अनेक नामवर विद्वानों ने जन्म लिया जो इस संस्था के प्रमुख अंग बने रहे। इस संस्था ने भारत के छात्रों को आकर्षित किया[9] फरंगी महल।[9] ने सर्व व्यापक अनेक महान उलमा उत्पन्न किये। इस संस्था ने **हदीस** व **तफ़्सीर** की अपेक्षा 'फिक़' और **'उसूल–ए–फिक़'** में अधिक ज़ोर दिया। अतः अपनी इस विशिष्टता से यह संस्था विख्यात हो गयी।

मदरस–ए–रहीमिया– यह **'मदरस–ए–रहीमिया'** दिल्ली में स्थापित था। यह मदरसा हज़रत शाह वलीउल्लाह देहलवी के पिता श्री शाह अब्दुल रहीम ने स्थापित किया था। प्रारम्भ में यह मदरसा महल्ला **'मेंहदियाँ'** के निकट स्थित था। इस मदरसे में हज़रत शाह अब्दुल रहीम ने हदीसों का दर्स (शिक्षण कार्य) प्रारम्भ किया। धीरे–धीरे इस मदरसे में

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

विशाल संख्या में छात्र एकत्र होने लगे।[10] मदीने शरीफ़ से वापस लौटने के बाद हज़रत शाह वलीउल्लाह ने अपने पिता के मदरसे में हदीस शरीफ़ का अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। थोड़े समय में ही उनकी ख्याति दूर–दराज़ क्षेत्रों तक फैल गयी। नाम सुनकर दूर–दूर से छात्रों की विशाल संख्या वहाँ पहुँचने लगी। किन्तु उन छात्रों की व्यवस्था करना कठिन हो गया। अतः जब यह खबर मुगल बादशाह मुहम्मद शाह को पहुँची तो उसने दिल्ली के आन्तरिक भाग में एक विशाल भवन इस संस्था को दान स्वरूप भेंट कर दिया[11] हज़रत शाह वली उल्लाह के पुत्र हज़रत शाह अब्दुल अज़ीज़ के समय में यह मदरसा दिन–प्रतिदिन तरक्की (उन्नति) करता गया और दूर व समीप के छात्रों को अपनी ओर आकृष्ट करता रहा।[12] सन् 1857 ई0 तक यह मदरसा अत्यधिक भव्य एवं महत्वपूर्ण शिक्षा के केन्द्र बना रहा।[13] उत्तर भारत के अन्य मदरसों में फैज़ाबाद, जौनपुर, फर्रूखाबाद, रामपुर, शाहजहाँपुर, बरेली बदायूँ और आगरा, सण्डीला आदि स्थानों पर मदरसे स्थापित थे। इस सभी मदरसों में विख्यात मनीषियों के दिशा–निर्देशों से **'दर्से–ए–निजामी'** पाठ्यक्रम ही मुदर्रिसीन (अध्यापकों) ने जारी किया गया जिसे सभी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया था।

सज़ा (दण्ड) का प्राविधान– मदरसे में अनुपस्थित रहने पर या शरारती बच्चों को सज़ा दिये जाने का प्राविधन था। शिक्षकों द्वारा उनकी छड़ी से पिटाई होती थी, चाँटे भी लगाए जाते थे। बहुत ज्यादा खुराफात करने पर कभी–कधार लात–घूसों का भी प्रयोग किया जाता था। बच्चों को मुर्गा बनाना, पंजों के बल खड़ा करना तथा आधा झुककर दोनों हाथों को पीछे की ओर से टाँगों के नीचे से निकाल कर कानों को पकड़े रहना पड़ता था।[14] यातना को और बढ़ाने के लिए कभी–कभी बच्चे पर भारी बोझ रख दिया जाता था। कभी–कभी अपराधी को एक निश्चित अवधि तक बिना किसी का सहारा लिए एक पाँव पर ही खड़ा रहना पड़ता था।[15] कभी–कभी कानों को मरोड़ दिया जाता था। कभी तो कुछ समय के लिए पेड़ की डाल पर उल्टा लटका दिये जाने की सज़ा दी जाती थी।[16] मौलवी साहबान अपनी बुद्धि का प्रयोग कर किसी अन्य प्रकार से भी बच्चों को दण्ड दिया करते थे।[17] किन्तु इन सभी प्रकार की बच्चों को दी जाने वाली बर्बर सजा (प्रदण्ड) प्रणाली में बच्चे के माता–पिता को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं था।

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)

अध्ययन का पाठ्यक्रम– इस्लाम के ज्ञान के लिए उस समय अरबी व फारसी भाषाएं ही दो महत्वपूर्ण साधन थे। अध्ययन से पता चलता है कि प्रारम्भिक व माध्यमिक स्तर पर फारसी भाषा के अध्ययन पर अधिक ज़ोर दिया जाता था। कही–कहीं तो फारसी भाषा ही शिक्षा का माध्यम था।

प्रारम्भिक व माध्यमिक संस्थाओं/मदरसों के लिए पाठ्यक्रम को निम्नवत् निर्धारित किया गया था–

नस्र/गद्य के अन्तर्गत – नुस्ख–ए–तमिया, तालीम–ए–अज़ीज़ी, दस्तूरूस्सिबियान, इन्श–ए–फायक़, इन्श–ए–खलीफ़ा, रूकआत–ए–आलमगीरी, गुलिस्तान, मक्तूबात–ए–अबुल फज़्ल, बहार–ए–दानिश, अनवार–ए–सुहैली, नस्र–ए–ज़हूरी, तथा बक़ा–ए–नियामत खान–ए–आली।

नज़्म/कव्य के अन्तर्गत – करीमा, मा मुक़ीमा, खालिक़–ए–बारी, बोस्तान, यूसुफ जुलैखा, क़साइद–ए–उर्फ़ी, कसा कसाइद–ए–बद्र, दीवान–ए–ग़नी, सिकन्दर नामा आदि।[18]

18वीं शताब्दी के मध्य हज़रत शाह वलीउल्लाह देहलवी के समकालीन हज़रत मुल्ला निज़ामुद्दीन थे जिन्होंने उच्च शिक्षा के लिए एक पाठ्यक्रम निश्चित किया था जिसे **'दर्स–ए–निजामिया'** कहा गया। यह **शिक्षा–पाठ्यक्रम** देश भर में अपना लिया गया तथा आगामी शताब्दी में भी प्रचलित रहा। इसमें ग्यारह विषय थे और प्रत्येक विषय की पुस्तकें निर्धारित की गयी थीं–

1. **सर्फ़ (विभक्ति तथा क्रिया–पदों के रूप):–** मीज़ान, मुन्शइब, सर्फ़–ए–मीर फुसूल–ए–अकबरी, पंजगंज, जुब्दा, फुसूल–ए–अकबरी व शाफ़ियह।
2. **नह्व (व्याकरण तथा वाक्य रचना):–** नह्व मीर, शरह–ए–मिअत आमिल, हिदायतुन्नह्व, क़ाफ़िया, शरह–ए–जामी।
3. **मंतिक़ (तर्कशास्त्र):–** सुग़रा, कुबरा, ईसाग़ोज़ी, तहज़ीब, शरह–ए–तहज़ीब, कुतबी मअ़मीर तथा सुल्लमुलउयूम।
4. **हिकमत (दर्शन शास्त्र):–** मेबज़ी, सिदरा, शम्स–ए–बाज़िग़ा।

5. **रियाज़ी (गणित):–** खुलासतुल हिसाब, तहरीर–ए–अक़लीदस, मकलैऊ3ला, तशरीहउल– अफ़लाक़, रिसाल–ए–कौसज़िया, शरह–ए–चग़मानी बाब–ए–अव्वल।

6. **बलाग़त (कम शब्दों में पूरा वाक़िया/साहित्य शास्त्र):–** मुख़्तसरूल मआ़नी, मुतव्वलात ता मआ़नाक़लत।

7. **फ़िक़् (न्याय शास्त्र):–** शरह–ए–वक़ाया अव्वलीन, हिदाया आख़िरीन।

8. **उसूल–ए–फ़िक़ह (मज़हबी बहस–ओ–मुबाहिसा/आक़ायद की बहस/मसायल /न्याय शास्त्र के सिद्धान्त):–** नूरूल अनवार, तौजीहुत तलबीह, मुसल्लिमुस्सूबूत (मवादी–ए–कलाम)।

9. **कलाम (धार्मिक तर्क शास्त्र/अकायद की बहस/धार्मिक विश्वास पर वार्ता):–** शरह–ए–अकायद–ए–नसफ़ी, शरह–ए–अक़ायद–ए–जलाली, मीर ज़ाहिद, शरह–ए– मवाफ़िक़।

10. **तफ़्सीर (धर्म–ग्रन्थ टीका):–** जलालैन, बैज़ावी।

11. **हदीस (परम्परायें/फरमान–ए–नबी मुहम्मद (स0)/सम्बद्ध कथन/कार्य)** – मिश्कातुल मसाबीह।

उक्त फ़न (विषयों) के अतिरिक्त चार और फ़न (विषय) को जोड़ दिये गये थे–

1. **अदब (साहित्य):** नफ़हतुल यमन, सबआ मुअलक़ा, दीवान–ए–मुतनब्बी, मक़ामात–ए– हरीरी, हमसा।

2. **फराइज़ (कर्त्तव्य):** शरीफ़िया।

3. **मुनाज़रा (धार्मिक वाद–विवाद)**

4. **उसूल–ए–हदीस (हदीस के सिद्धान्त):**[20]

जैसे–जैसे समय व्यतीत होता गया, कुछ लोगों ने **'दर्स–ए–निज़ामिया'** की आलोचना करना शुरू कर दिया।[21] किन्तु **'दारूल–उलूम'** देवबन्द ने 19वीं शताब्दी के अन्त तक इस पाठ्यक्रम को ज्यों का त्यों बना ही रखा। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन

© **Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)**

नहीं किया। मूलरूप से यह पाठ्यक्रम 20वीं शताब्दी में तो मुस्लिम मज़हबी/इस्लामी मदरसों के पाठ्यक्रम का आधार बन गया।[22]

'दर्स–ए–निज़ामिया' में निर्धारित पुस्तकों पर इतना बल नहीं दिया जाता था जितना कि अध्ययन के दौरान पढ़े गये विषयों में निपुणता प्राप्त करने पर। मुदर्रिस (शिक्षक) को अध्ययन विषय पर उपलब्ध प्रासांगिक ज्ञान को प्राण–पण से सिखाना, समझाना व पढ़ाना पड़ता था। यह उल्लेखनीय है कि अगर देश की विभिन्न दर्सगाहों (शिक्षण–संस्थाओं) में पाठ्यक्रम और अध्यापन प्रणाली लगभग समान थी फिर भी उच्च शिक्षा केन्द्रों में किसी एक विषय के अध्ययन को विशेष महत्व दिया जाता था। उदाहरण के तौर पर अगर दिल्ली का मदरसा **'रहीमिया'** 'हदीस' व 'तफ़सीर' में विशिष्टीकरण प्रदान करता था तो लखनऊ का **'फरंगी महल मदरसा'** फ़िक पर अधिक बल प्रदान करता था तथा **सियालकोट का मदरसा नह्व** में विशिष्टीकरण में लासानी (अद्वितीय) था।

परीक्षा प्रणाली एवं उपाधि वितरणः– उस समय की परीक्षा प्रणाली तथा उपाधि वितरण आज से काफी भिन्न थी। उस समय वार्षिक परीक्षा का प्रचलन नहीं था। किसी छात्र का निम्न कक्षा से उच्च कक्षा में जाना उस छात्र के मुदर्रिसों (अध्यापकों) की शिफारिशों पर ही निर्भर करता था। वे छात्र की प्रगति के विषय में अपने व्यक्तिगत सम्पर्क के आधार पर, उसकी उपलब्धि का का सम्यक् मूल्यांकन कर लेते थे। ज्ञान की विशेष शाखा ने छात्र की विशेष योग्यता के अनुसार शैक्षिक उपाधियाँ प्रदान की जाती थीं। उदाहरण के तौर पर **जो विद्यार्थी धर्मशास्त्र में प्रवीण एवं विशेषज्ञ हो जाते थे उन्हें 'आलिम' की उपाधि से विभूषित किया जाता था। जो विद्यार्थी तर्क शास्त्र एवं दर्शन में विशेष योग्यता प्राप्त कर लेते थे, उन्हें फाज़िल की उपाधि प्रदान की जाती थी। ऐसे विद्यार्थी जो साहित्य में विशेष योग्यता प्राप्त करते थे उन्हें 'क़ाबिल'** की उपाधि से अलंकृत किया जाता था। वस्तुतः ये उपाधियाँ योग्य छात्रों को एक **'नियमित समारोह'** में वितरित किये जाने का प्रचलन (रिवाज़) था जो विशेषकर इसी उद्देश्य से आयोजित किया जाता था।

शिक्षा प्रणाली की खामियाँ (त्रुटियाँ):– तात्कालिक शिक्षा पद्वति अपने युग की तर्जुमानी (अनुकरण) करती थी। किन्तु यह उस समय विद्यार्थियों में अन्वेषण की स्वतंत्र एवं

स्वाधीन प्रेरणा जागृत करने में सहायक नहीं थी। परन्तु यह बात अवश्य थी कि प्रारम्भिक पाठशालाएं (मदारिस) बच्चों (विद्यार्थियों) को केवल पढ़ने, लिखने तथा साधारण अंकगणित का ज्ञान प्रदान कराती थी। उच्च शिक्षा केन्द्र इस्लाम धर्म प्रेरित होने के कारण विश्व के प्रति केवल परम्परागत धार्मिक दृष्टिकोण (नज़रिया) उत्पन्न करने से अधिक और कुछ न करते थे। वास्तव में शिक्षण संस्थाएं (मदारिस) केवल बालकों की शिक्षा तक सीमित थीं। बालिकाओं अथवा स्त्री शिक्षा का कोई प्राविधान ही नहीं था। भले ही सम्भ्रान्त परिवारों में बालिकाओं के लिए अलग से किसी मुअल्लिम (शिक्षक) बापर्दा पढ़ाने का रिवाज़ रहा हो।

शिक्षा का माध्यम प्राचीन शास्त्रीय भाषाओं अर्थात् अरबी व फारसी ही थीं जो मुस्लिम सर्वसाधारण के लिए कुछ सीमा तक उपयुक्त थीं। किन्तु यह भी निःसन्देह अरबी व फारसी भाषाएं धर्म शास्त्र, साहित्य एवं दर्शन आदि विषयों में सम्पन्न थीं परन्तु उनमें वैज्ञानिक व यान्त्रिक ज्ञान का सर्वथा अभाव था।

एक विशेष बात यह कि उस समय प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव था। किन्तु साधारणतः जिन नामवर अध्यापकों के जेर–ए–निगराँ पढ़ाई–लिखाई की गयी थी, ऐसे लोग जो अध्यापन कार्य करते–करते वह भी एक प्रकार का प्रशिक्षण–प्राप्त अध्यापक हो गये थे। सम्भवतः उस समय भारत के इतिहास, दर्शन, साहित्य तथा अन्य धर्म सम्बन्धी अध्ययन की कोई व्यवस्था न रही हो। जिससे कि आगे चलकर वाद–विवाद की स्थिति उत्पन्न हो सकती। किन्तु जैसे–जैसे समय व्यतीत होता गया वैसे–वैसे मध्ययुगीन शिक्षा में सुधार एवं परिवर्तन ने स्थान ग्रहण करना शुरू कर दिया। परिणामतः आधुनिक शिक्षा जिसमें विभिन्न विषय समाहित होते चले गये। वास्तव में उसी मध्ययुगीन शिक्षा प्रणाली के पश्चात् आयी चेतना एवं परिवर्तन का ही परिणाम दिखायी पड़ रहा है।

सहाय्यित सामग्री

1. Imperial Gazetier of India, Oxford, 970, Vol. 4, Page 408.
2. S.M. Jafar, 'Education in Muslim India, Peshawar' 1939, Page 18-19.
3. Imperial Gazetier, Vol. 4, Page 408.
4. Glimpses of Medieval Indian Culture, Bombay, 1932, Page 71.
5. हज़रत मुल्ला कुतुबुद्दीन एक सुप्रसिद्ध विद्वान थे। वह लखनऊ से लगभग 32 मील की दूरी पर स्थित सिहाली नामक ग्राम के निवासी थे। सन् 1691 ई0 में उसी गाँव के ही प्रतिद्वन्दी गुट के किसी व्यक्ति ने उन्हीं के निवास स्थान पर उनका वध कर दिया। जब इस दुखद घटना का समाचार सम्राट औरंगजेब तक पहुँचा, तो सम्राट् ने जाँच के आदेश दे दिये और अपराधियों को दण्ड देने का 'फरमान' (आदेश) जारी कर दिया। चूँकि मृतक का परिवार सिहाली में और अधिक समय तक रहना नहीं चाहता था। अतएव सम्राट् औरंगजेब ने लखनऊ में **'फरंगी महल'** नामक एक विशाल भवन का निर्माण करा दिया। मुल्ला कुतुबुद्दीन के पुत्र मुल्ला निज़ामुद्दीन उस समय केवल 14 वर्ष के थे। विभिन्न विद्वानों की निगहदाश्त (सरपरस्ती/संरक्षता) में अपनी शिक्षा पूर्ण कर लेने के बाद वे फरंगी महल में बस गये और एक शिक्षक के रूप में जीवन–यापन करने लगे। शीघ्र ही उनकी ख्याति इतनी अधिक फैल गयी कि निकट एवं दूर से शिष्य (विद्यार्थी) आकर्षित होने लगे। उनकी आकर्षक शिक्षण–पद्धति से **'फरंगी महल मदरसे'** की ख्याति दूर–दूर तक फैल गयी और शीघ्र ही यह मदरसह इस्लामी शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया।

6 सैयद तुफैल अहमद, **'मुसलमानों का रौशन पुस्तक बिल',** दिल्ली, 1945, पृ0 136

7 अबुल हसन नदवी, **'हिन्दुस्तान की कदीम दर्सगाहें', आज़मगढ़**, 1936, पृ0 97–98

8 I वही, पृ0 38

II **इन्तजामुल्लाह शहाबी, 'इस्लामी नज़्म–ए–तालीम का चौदह सौ साला मुरक़्क़ा'**, कराची, 1961, पृ0 48

9 तारीख–ए–मुहम्मद शाही, पृ0 156

10 तारीख–ए–मुहम्मद शाही, पृ0 158

11 मौलवी बशीरूद्दीन अहमद, **'वाकियात–ए–दारूल हुकूमत–ए–दहेली', आगरा,** 1919, भाग–2, पृ0 286

12 सैयद तुफैल अहमद, **'मुसलमानों का रौशन पुस्तक बिल'**, दिल्ली, 1945, भाग–2, पृ0 286

13 मौलवी बशीरूद्दीन अहमद, **'वाकियात–ए–दारूल हुकूमत–ए–दहेली'**, आगरा, 1919, भाग–2, पृ0 286

14प S.M. Jaffar, **'Education in Muslim India',** Peshawar, 1936, P. 25.

15. G. Anderson, **'The Development of An Indian Policy'**, London, 1921, Pages. 130-31.

16. बही, पृ0 131

17. Imperial Gazetier of India, Oxford, 970, Vol. 4, Page 409.

18 अबुल हसन नदवी, **'हिन्दुस्तान की कदीम दर्सगाहें', आज़मगढ़,** 1936, पृ0 119

19 बही, पृ0 97–98

20 बही, पृ0 99–100

21 अपने प्रबुद्ध शिक्षा–विदों के कौल या मतानुसार– 'दर्स–ए–निज़ामिया पाठ्यक्रम भारतीय मुसलमानों के मानसिक एवं बौद्धिक विकास में सहायक सिद्ध नहीं हुआ यह वर्तमान समय की आवश्यकताओं के लिए परिस्थितिवश सार्थक न हो सका।'

22 सैयद तुफैल अहमद, **'मुसलमानों का रौशन पुस्तक बिल'**, दिल्ली, 1945, पृ0 136

' ' '